❁ भूमिका ❁

इस उपनिषद् का नाम मुण्डक है और इसके हरएक अध्याय भी अलग २ मुण्डक कहलाता है। इस नाम का कारण अभी तक निर्णीत नहीं हुआ। नारायण लिखता है कि यह "शिरोव्रत" (जो ३।२।१० में दिया है उस) के पूरा करने के पीछे पढ़नी चाहिये, इसलिये इसका नाम मुण्डक है। अर्थात् मुण्डक, मुण्ड शब्द से है, जिसका अर्थ सिर है। दूसरे व्याख्याकार कहते हैं कि यह उस्तरे की नाईं हृदय की गांठों को काटने वाली है, इसलिये मुण्डक (मूंडने वाली) कहते हैं छोटी उपनिषदों में एक क्षुरिका (क्षुरिकोपनिषद्) भी है, जिसका अर्थ है छुरी वा उस्तरा ॥

यह उपनिषद् अथर्ववेद सम्बन्धी है। इसके तीन मुण्डक और छः खण्ड हैं। इस को मन्त्रोपनिषद् कहते हैं, क्योंकि यह पद्यमय है। इस में अपरा और परा दो विद्याओं का वर्णन है। वह पुरुष जो श्रद्धा से वैदिक कर्मों में प्रवृत्त रहता है, वह अपने भविष्य को सुधार लेता है। और जो इन कर्मों का त्याग करता है, उसके सातों लोक नष्ट होजाते हैं। पर यह निःसन्देह है, कि केवल कर्म्म को वार २ दुहराने से अविद्या नष्ट नहीं होती। उसके लिये एक पूर्ण गुरु की शरण लेनी चाहिये, जो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हो। तब हृदय की गांठें खुल जाती हैं और सन्देह दूर होजाते हैं। एक बड़ा गृहस्थ भी इस विद्या को लाभ कर सकता है जैसाकि यही उपनिषद् एक बड़े गृहस्थ शौनक को उपदेश कीगई है। तथापि प्रायः यही नियम है, कि यह विद्या उनके लिये है जो संन्यास के सम्बन्ध से सर्वथा शुद्धहृदय हैं ॥

* पहला मुण्डक—पहला खण्ड *

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा मथर्वाय ज्येष्ठ-पुत्राय प्राह॥ १॥ अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥ २॥ शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्न पप्रच्छ। कस्मिन्नु भगवो! विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति॥ ३॥

*देवताओं के मध्य में ब्रह्मा पहले प्रकट हुआ, जो विश्व का कर्ता और भुवन का रक्षक है। उस ने ब्रह्मविद्या, जो सब विद्याओं की प्रतिष्ठा (बुनियाद) है, अपने सब से बड़े पुत्र अथर्व को बतलाई॥ १॥ ब्रह्मा ने जो †अथर्वा को बतलाई थी, अथर्वा ने वह ब्रह्मविद्या प्राचीनकाल में अङ्गिर को बतलाई; उस

---

* ब्रह्म को अपने शुद्धस्वरूप में परमात्मा, परम पुरुष, परब्रह्म और अक्षर कहते हैं। और विशिष्ट रूप में उसे इन्द्र आदि देवताओं के नाम से बुलाते हैं। उसके विशिष्ट रूपों में सब से पहला रूप ब्रह्मा का है। अपने से भिन्न सारी सृष्टि का यह स्रष्टा है और सृष्ट हुए सारे ब्रह्माण्ड का रक्षक है। ऋषियों में वेदविद्या का प्रकाश यतः ब्रह्मा से हुआ है, इस आशय से यहां कहा है, कि उस ने ब्रह्मविद्या अपने बड़े पुत्र अथर्वा को बतलाई। हम सब उसके पुत्र हैं, और जिन ऋषियों पर आदि में वेद उतरा, वे ब्रह्मा के सब से बड़े पुत्र हैं। पर यह उपनिषद् अथर्ववेद की है, इसलिये यहां अपने ही ऋषि अथर्वा का वर्णन किया है। यह अभिप्राय नहीं, कि ब्रह्मा से केवल अथर्वा ने ही ब्रह्मविद्या पाई, किन्तु जो ब्रह्मविद्या अथर्वा ने पाई, वह यह है॥

† अथर्व (अकारान्त) और अथर्वन् नकारान्त दोनों शब्द हैं॥

ने फिर भारद्वाज (भारद्वाज गोत्री) सत्यवाह को बतलाई; और भारद्वाज ने यह *परावरा विद्या अङ्गिरा को बतलाई ॥ २ ॥ अब शौनक एक बड़ा भारी गृहस्थ (कुटुम्बी) विधि अनुसार भारद्वाज के पास आया और पूछा 'हे भगवन्! वह क्या है, कि जिस एक के जानने पर यह सब कुछ ही जाना हुआ हो जाता है'? ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥ तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते ॥५॥ यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्र-मवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्व-गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परि पश्यन्ति धीराः ।

उसको उसने कहा 'ब्रह्म के जानने वाले बतलाते हैं, कि दो विद्याएं जानने योग्य हैं एक परा और दूसरी अपरा ॥ ४ ॥ उन में से †अपरा विद्या है-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा शिक्षा,

* परावरा, जो बड़े से छोटे के पास आई । अथवा परा, जिससे परब्रह्म को जानते हैं और अपरा जिस से धर्म्म, धर्म्म के साधन और अपर ब्रह्म को जानते हैं, यह दोनों प्रकार की विद्या ॥

† वेदों में प्रायः अपर ब्रह्म (ब्रह्म के विशिष्ट रूप, हिरण्यगर्भ आदि) की पूजा (यज्ञ और उपासना) है । यही अपरा विद्या है, जैसा आगे यज्ञों के वर्णन से विदित होता है । इसी हेतु से वेद और वेदाङ्गों को अपरा विद्या कहा है । परा विद्या वह है, जिस से परब्रह्म अर्थात् शुद्ध स्वरूप अक्षर पुरुष का ज्ञान होता है । यह विद्या भी वेदों में है, उपनिषदें उसी का सविस्तर व्याख्यान हैं ।

कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। और परा वह है, जिसके द्वारा वह अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) पाया जाता है ॥ ५ ॥ जो न देखा जाता है, न पकड़ा जाता है, जिसका कोई गोत्र नहीं, *वर्ण नहीं, न जिसके नेत्र हैं, न श्रोत्र, न हाथ, न पाओं वह नित्य है, फैला हुआ है [सब को घेरे हुए है] सब के अन्दर है, बड़ा सूक्ष्म है, वह अव्यय [नाश न होने वाला] है, जिस को धीर पुरुष सब भूतों का कारण [चश्मा] देखते हैं ॥ ६ ॥

परा विद्या भी वेद में हैं, इस में सन्देह करने की जगह ही नहीं। सब से पहली उपनिषद् (ईश) यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है। उपनिषदों में कई जगह पर ऋचायें उद्धृत की हुई पाई जाती हैं। हम भी वेदोपदेश में इस विषय के बहुत से मन्त्र दिखला चुके हैं। यह परा और अपरा विद्या दोनों जानने योग्य हैं (देखो ईश० ११) ॥ शिक्षा, जिस में उच्चारण करना सिखाया है (Phonetics), कल्प जिसमें यज्ञों की विधि बतलाई है, अर्थात् श्रौतसूत्र (Ceremonial) व्याकरण (Grammar), निरुक्त, जिस में यह दिखलाया है कि यह नाम इस वस्तु का किस तरह हुआ, जैसा इस पृथिवी को पृथिवी नाम क्यों दिया गया (Etymology) छन्द (Metre) ज्योतिष (Astronomy)। नारायण को मूल उपनिषद् में ज्योतिष के आगे "इतिहास, पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्म्मशास्त्राणीति" ऐसा पाठ मिला है। पर वह स्वयं इसको प्रक्षिप्त मानता है, क्योंकि पूर्वाचार्यों ने इसकी व्याख्या नहीं की। यह पाठ अब भी किसी २ हस्तलिखित पुस्तक में पाया जाता है। इसको यहां प्रक्षिप्त करने का बीज याज्ञवल्क्य स्मृति का यह श्लोक प्रतीत होता है, जिस में विद्याओं के और धर्म्म के चौदह स्थान बतलाए हैं ॥

पुराणं न्यायमीमांसाधर्म्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्म्मस्य च चतुर्दश ॥

* गोत्र अर्थात् उसका मूल नहीं और वर्ण, स्थूल होना, वा श्वेत होना इत्यादि गुण नहीं (शङ्कराचार्य) पर गोत्र के सम्बन्ध से यहां वर्ण का अर्थ ब्राह्मण आदि ही समुचित प्रतीत होता है।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथा ऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥ तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥

*जैसे मकड़ी (तन्तुओं) को छोड़ती है और (फिर अपने अन्दर) समेट लेती है, जैसे पृथिवी पर पौदे उत्पन्न होते हैं, जैसे विद्यमान (जीते हुए) पुरुष से (सिर और शरीर पर) बाल और रोम उत्पन्न होते हैं [†]इस प्रकार वह हर एक वस्तु

---

* अक्षर (ब्रह्म) किस तरह भूतयोनि है, यह दिखलाते हैं।

† व्याख्याकारों ने इन दृष्टान्तोंसे भिन्न २ अभिप्राय लिये हैं। आनन्दगिरि और शङ्कराचार्य का यह आशय है, कि जिस तरह कुम्हार घड़ा बनाने के लिये दूसरे सहायकों (साधनों) की आवश्यकता रखता है, इस तरह ब्रह्म को किसी सहायक की आवश्यकता नहीं, यह मकड़ी के दृष्टान्त से दिखलाया है। और जैसे पृथिवी से तत्स्वरूप ही पौदे उत्पन्न होते हैं, और जैसे पुरुष से जो केश और लोम उत्पन्न होते हैं, वे पुरुष से विलक्षण होते हैं। इसी प्रकार यह सलक्षण और विलक्षण सारा जगत् किसी दूसरे सहायक के बिना उस अक्षर से उत्पन्न होता है। राघवेन्द्रयति का आशय यह है कि जैसे मकड़ी ने जो कुछ खाया है, वह उसके पेट में तन्तुरूप बन जाता है, मकड़ी उसको बाहर निकालती है; और बाहर निकले हुए को फिर अन्दर अपने पेट में ले आती है; इसी प्रकार यह विश्व जो कि प्रलय के समय परमात्मासे निगल लिया गया था; अब फिर उससे बाहर निकलता है; इसी लिये उसको भूतयोनि (भूतों का चश्मा) कहा है। वह आप जगत् रूप में नहीं बदलता और न उस में जगत् की भ्रान्ति होती है। और जैसे पृथिवी नाना बीजों की अपेक्षा से

जो इस ब्रह्माण्ड में है, उस अक्षर (अविनाशी) से उत्पन्न होती है ॥७॥ ब्रह्म *तप के द्वारा †फूलता है, तब ‡अन्न (माद्दा, मैटर) उत्पन्न होता है, अन्न से §प्राणः मन, ||सत्य, (सात) लोक, और कर्मों में *अमृत (फल) ॥ ८ ॥ जो सब को जानता है और सब को समझता है, जिसका तप ज्ञान रूप है, उस (पर ब्रह्म से) यह ब्रह्म(हिरण्य गर्भ), नाम रूप, और अन्न (मैटर) उत्पन्न होता है॥

नाना प्रकार के अंकुरों को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार जीवों के नाना प्रकार के कर्मों की अपेक्षा से नाना प्रकार के जीवों को वह रचता है। वह जिसको अच्छा बनाता है; उसका पक्षपाती नहीं; और जिसको निचला जन्म देता है; उसका द्वेषी नहीं। यह उनके कर्मों के बीज हैं; जिससे उनके लिये नाना प्रकार के शरीर (पौदे) उत्पन्न होते हैं। और जैसे आत्मा के देह में होने से स्वतः ही देह में जीवन बना रहता है और देह से बाल और रोम उगते हैं। आत्मा को उनके उगाने के लिये कोई यत्न नहीं करना पड़ता; इस प्रकार अनायास ही यह जगत् उससे उत्पन्न होता है। और वह इस इतने बड़े महान् कार्य को करता हुआ भी बिना आयास के करता है ॥

* तप=ज्ञान; सृष्टि के रचने का ध्यान ॥

† ब्रह्म जिसका शरीर प्रकृति है; उस में जगत् को उत्पन्न करने के लिये जो उच्छ्वास है; वही फूलना है; जैसे अंकुर को उत्पन्न करने के समय बीज फूलता है ॥

‡ जो कुछ सब यह नाना रूप दिखलाई देरहा है। यह सारा नानारूप प्रलय में एकरूप होता है, यद्यपि ये सारे भेद उसी में हैं, पर उस समय ये सारे भेद मिटे हुए होते हैं, इसी लिये उस अवस्था में मैटर को अव्याकृत (जिस में कोई निखेड़ा, कोई तमीज़ नहीं हो सकती) कहते हैं, उस अव्याकृत का उस अवस्था में होना जिस से आगे नानारूप की तमीज़ होने वाली है, यही उसकी उत्पत्ति है ॥

§ प्राण=हिरण्यगर्भ, समष्टि जीवन (शङ्कराचार्य्य)।

|| सत्य=पांच महाभूत (शङ्कराचार्य्य)।

* कर्म्म जो लोकों में मनुष्यों से किये जाते हैं, उनका फल अमृत है। अटल है।

॥ दूसरा खण्ड ॥

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ नियतं सत्य-कामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ॥१॥ यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने । तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ॥२॥ यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्य मनाग्रयण मतिथिवर्जितं च । अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ ॥

*यह सत्य है कि ऋषियों ने (वेद के) मन्त्रों में जो कर्म देखे हैं, वे त्रेता† में अनेक प्रकार से फैले हुए हैं । उनको तुम नियम से आचारण करो हे सचाई से प्यार करने वालो ! यह तुम्हारा रस्ता है, जो पुण्य‡ के लोक में ले जाता है ॥१॥ §जब

---

* दो विद्यायें जानने योग्य कही हैं, उन में से इस दूसरे खण्ड में अपरा विद्या का वर्णन है, अर्थात् यज्ञ और दूसरे शुभ कर्मों का और फिर इनके फल को नाशवान् दिखलाकर परा विद्या की इच्छा जगाई गई है ॥

† त्रेता=त्रयी विद्या (ऋक्, यजु, साम तीन प्रकार के मन्त्र) (त्रयी विद्या में अथवा त्रेता युग में--शङ्कराचार्य्य) ॥

‡ सुकृत=स्वकृत, अपना किया हुआ (शङ्कराचार्य्य) अभिप्राय दोनो में एक है, सुकृत=पुण्य कर्म्म और स्वकृत अपना किया हुआ कर्म्म, जिसको वह पुण्य जानकर करता है ॥

§ अग्निहोत्र सारे कर्मों में से प्रथम है और दूसरे यज्ञों का मूल है, इसलिये पहले उसी को दिखलाते है ॥

अग्नि के प्रदीप्त होने पर लाट खेलती है, तब *आज्यभाग की दो आहुतियों के बिना आहुतियें देना चाहियें ॥ २ ॥ जिसका अग्नि होत्र बिना दर्श पौर्णमास, चातुर्मास्य और आग्रयण के है, अतिथियों से वर्जित है, बराबर जारी नहीं रहता है, बिना वैश्वदेव के है, वा विधि से नहीं किया जाता है, वह उसके सातों लोक नष्ट कर देता है† ॥ ३ ॥

---

* पिघले हुए घी को आज्य कहते हैं। दर्श और पौर्णमास यज्ञ में पहले आहवनीय के दक्षिण और उत्तर पार्श्व में "अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा" इन मन्त्रों से आज्य की दो आहुतियें दी जाती हैं, इनको आज्यभाग कहते हैं। इनके मध्य में जो स्थान है, वह आवापस्थान कहलाता है। आज्य भाग की दो आहुतियें दक्षिण उत्तर में देकर शेष आहुतियें आवापस्थान में देनी चाहियें। आज्य भाग की आहुतियें दर्श पौर्णमास में दी जाती हैं, अग्निहोत्र में नहीं, और यहां पहले अग्निहोत्र का विषय कहा है। इसलिये "आज्यभागावन्तरेण" का अर्थ आज्यभाग के बिना यही ठीक प्रतीत होता है। नारायण ने भी इसी अर्थ को मुख्य माना है। पर स्वामी शङ्कराचार्य्य ने आज्यभाग आहुतियों के मध्य अर्थात् आवापस्थान में शेष आहुतियें देवे यह अर्थ लिया है। इस पर आनन्द गिरि ने दर्श पौर्णमास में आज्यभाग आहुतियें दीजाती हैं, यह स्पष्ट कर दिया है। और इसलिये यहां यह अर्थ भी लिया जासकता है कि पौर्णमास आदि जो आगे तीसरे मन्त्र में कहने हैं अग्निहोत्र के साथ सम्बद्ध हैं ॥

† मनुष्य को चाहिये कि अग्निहोत्र का आरम्भ करे और फिर उसका अग्निहोत्र बराबर जारी रहे। अग्निहोत्र सदा नियम से जारी रहे और शास्त्र की विधि के अनुसार हो। अग्निहोत्र, वैश्वदेव कर्म्म से शून्य नहीं होना चाहिये। अग्निहोत्री का घर ऐसा नहीं होना चाहिये। जिसको अतिथियों ने छोड़ा हुआ है। अग्निहोत्री को अपने समय पर दर्श आदि यज्ञ भी अवश्य अनुष्ठान करने चाहियें। यदि ये बातें पूरी होती हैं, तो वे इस कर्म्म के प्रभाव से सात लोक को जीत लेता है। और यदि ऐसा नहीं होता, तो वह इन लोकों को

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४ ॥ एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥५॥ एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

काली (काले रंग की) कराली (भयंकर) मनोजवा (मन की नाईं वेगवाली) सुलोहिता (बड़ी लाल) सुधूम्रवर्णा (धुएं के रङ्गवाली) स्फुलिङ्गिनी (चिङ्गाड़ियों वाली) विश्वरूपी (सारे रंगों वाली) यह चारों ओर खेलती हुई (अग्नि की) सात जिह्वा * कहलाती हैं ॥४॥ जब ये चमक रही हों, तो ठीक समय पर इनमें आहुतियें देता हुआ जो यजमान कर्म को पूरा करता है, उसको ये सूर्य की किरणें बन कर वहां ले जाती हैं, जहां

जीत नहीं सकता, मानों उसने अपने सातों लोक जो उसके होने थे, खोदिये हैं।

दर्श, अमावास्या का यज्ञ। पौर्णमास, पूर्णमासी का यज्ञ। चातुर्मास्य चारों महीनों के चार यज्ञ। आग्रयण नये अन्न का यज्ञ जो शरद और वसन्त में किया जाता है॥

सात लोक कौन हैं, यह बात उपनिषद् में नहीं लिखी। व्याख्याकारों ने पृथिवी से लेकर सत्य लोक पर्य्यन्त सात लोक लिये हैं। अर्थात् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। और ये सात भी लिये हैं पिता, पितामह, प्रपितामह, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, और यजमान स्वयं॥

* यजु० १७। ७९ में अग्नि की सात जिह्वा कही हैं॥

देवताओं का एक मालिक रहता है॥ ५ ॥ आओ, आओ ! यह उसे कहती हुई वे चमकती हुई आहुतियें यजमान को सूर्य की रश्मियों द्वारा उठा ले जाती हैं, प्यारी वाणी बोलती हुई और उसकी स्तुति करती हुई (कहती हुई) यह तुम्हारा पवित्र ब्रह्म-लोक है, जिसको तुमने अपने पवित्र कर्मों से पाया है ॥ ६ ॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो ये ऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥ अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथा ऽन्धाः॥८॥ अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥९॥ इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्याच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृते ऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ॥ १० ॥

* पर ये नौकाएं जो यज्ञरूपी हैं अठारह †, जिन में निचला (ज्ञान से निचले दर्जे का) कर्म्म बतलाया गया है । जो मूढ़

---

* कर्म्म की प्रशंसा करके अब आगे ज्ञान की ओर लेजाने के लिये, उनकी त्रुटि बतलाते हैं, जो केवल कर्म्म को ही पूर्ण मानकर उसी में बैठे रहते हैं ॥

† यहां अठारह से स्वामी शङ्कराचार्य्य और दूसरे व्याख्याकारों ने सोलह ऋत्विज और यजमान और उसकी पत्नी लिये हैं और राघवेन्द्रयति ने पत्नी की जगह सभ्य अग्नि लिखा है । पर अठारह से यहां अवश्य यही अभिप्राय है, यह कहना कठिन है "अष्टादश" यहां "प्लवाः" का विशेषण भी होसक्ता है ॥

इसी को परम कल्याण जानकर प्रशंसा करते हैं, वे फिर भी* जरा और मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ मूढ़ जन अविद्या के अन्दर रहते हुए, अपने आप धीर पुरुष बने हुए और अपने आप को पण्डित मानते हुए, चोटें खाते हुए चक्र लगाते हैं, जैसे अन्धे से ही लेजाए हुए अन्धे ॥८॥ वे बालक अविद्या के अन्दर बहुत प्रकार से रहते हुए, हम कृतार्थ हैं ऐसा मान लेते हैं। क्योंकि कर्मी लोग (स्वर्ग के विषयों के) राग से (तत्व) को नहीं जानते हैं,इस हेतु से वे दुःखी हुए (उस लोक) से गिरते हैं, जब उन का वह लोक (जो उन्हों ने अपने कर्म से प्राप्त किया है) क्षीण हो जाता है (=अपने पुण्यफल को भोग चुकते हैं) ॥९॥ इष्ट और पूर्त (यज्ञ और दूसरे नेक कामों) को सब से उत्तम मानते हुए ये मूर्ख उस से बढ़कर और कल्याण (भलाई) नहीं देखते हैं। वे स्वर्ग के पृष्ठ (पीठ) पर—जो उन्हों ने अपने पुण्य कर्मों से लाभ किया है † (अपने फल को) भोगकर इस लोक (मनुष्य लोक) वा इससे भी निचले (पशु आदि के) लोक में प्रवेश करते हैं‡ ॥१०॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥११॥ परीक्ष्य लोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्

---

* जैसाकि चन्द्र लोक में प्राप्त होने से पहले जरामृत्यु के चक्र में थे ॥

† देखो कठ० २। ५ ॥

‡ "सुकृतेन भूत्वा" इस पाठान्तर में "पुण्य से उत्पन्न होकर" यह अर्थ है (नारायण) ॥

प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥

पर वे जो वन में तप और श्रद्धा का सेवन करते हैं, शान्त, विद्वान्, भैक्षचर्य्या (भिक्षा वृत्ति) करते हुए *, वे सूर्य्य के द्वारसे वहां जाते हैं, जहां †, वह अमृत पुरुष है जो अव्यय (अविनाशी) स्वरूप है ॥ ११ ॥ कर्मों से जो लोक लाभ किये जाते हैं, उनकी परीक्षा करके (अनित्यता को जानकर) ब्राह्मण को चाहिये, कि (इन इच्छाओं से) वैराग्य को प्राप्त हो। क्योंकि वह जो अकृत (=न बना हुआ, नित्य) है, वह कृत (=बने हुए,कर्म्म) से नहीं प्राप्त किया जाता। उसके जानने के लिये उसको एक ऐसे गुरु के पास जाना चाहिये, जो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हो (वेद का जानने वाला और ब्रह्म में एकाग्रचित्त हो) ॥ १२ ॥ वह पुरुष जो इस प्रकार आदर से पास आया है, जिसके चित्त को इच्छाएं क्लेश नहीं देरहीं, जो पूरी शान्ति से युक्त है, उसके लिये वह विद्वान् (गुरु) उस ब्रह्मविद्या का यथार्थ उपदेश करे, जिससे उसने अविनाशी सत्य पुरुष को जाना है ॥ १३ ॥

---

* इस मन्त्र में उनका फल बतलाया है, जो विद्वान् (ज्ञान प्रधान) गृहस्थ हैं, और जो सारी इच्छाओं से ऊपर वानप्रस्थ वा संन्यास का जीवन अतिवाहित करते हैं, वन में रहने वाले और अपना परिग्रह (मलकीयत) छोड़कर भिक्षाचरण करते हुए, वानप्रस्थ और संन्यासी और विद्वान्=ज्ञान प्रधान गृहस्थ। वे इस उत्तर गतिको प्राप्त होते हैं। यहां तप अपने आश्रमका कर्म्म, और श्रद्धा=सगुण ब्रह्म=हिरण्यगर्भ आदि की उपासना है (शङ्कराचार्य्य)। वन में रहने वाले=वानप्रस्थ, शान्त विद्वान्=गृहस्थ, और भिक्षाचरण करने वाले=संन्यासी (नारायण) ॥

† जहां=सत्यलोक आदि में, पुरुष=हिरण्यगर्भ। उसका अविनाशी होना अपेक्षा से है, अर्थात् जब तक संसार है तब तक रहने वाला। यह कर्म्म और उपासना वाले की गति है (शङ्कराचार्य्य) ॥

॥ दूसरा मुण्डक—पहला खण्ड ॥

तदेतत्सत्यं—यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥१॥ दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २ ॥ एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥३॥

* सो यह सत्य है। जैसे चमकते हुए अग्नि से उसके समान-रूप हज़ारों चिंगाड़े उठते हैं†, इसी प्रकार हे सोम्य! नाना प्रकार के सत्त्व (जन्तु) अक्षर से प्रकट होते हैं, और उसी में लीन होते हैं ॥ १ ॥ दिव्य पुरुष बिना शरीर के हैं, वह बाहर और अन्दर दोनों जगह है ‡। वह जन्म नहीं लेता, बिना प्राण और बिना मन के हैं, शुद्ध है, अक्षर जो परे है, उससे वह परे है§ ॥२॥ उससे प्राण उत्पन्न होता है, मन और सारे इन्द्रिय, आकाश, वायु, ज्योति जल, और पृथिवी जो सब के धारने वाली है ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥ तस्मादग्निः समिधो

---

* परविद्या का विषय जो परब्रह्म है, उसके विज्ञान के लिये अब अगला ग्रन्थ है।

† मिलाओ। बृह० आर० २। १। २०

‡ बाह्य और आभ्यन्तर के साथ वर्तमान है (शङ्कराचार्य)।

§ कार्य्य जगत् से परे जो अक्षर, अव्यक्त, प्रकृति है, पुरुष उससे परे है (देखो कठ० उप० १। ३। ११)॥

यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः

अग्नि (द्यौ लोक) इसका मूर्धा (सिर) है, सूर्य्य और चन्द्र इसके नेत्र हैं, दिशाएं इसके श्रोत्र हैं, खुले वेद इसकी वाणी हैं, वायु प्राण है, और विश्व हृदय है, पृथिवी इसके पांओं है, यह सब भूतों का निःसन्देह अन्तरात्मा है * ॥ ४ ॥ उससे वह अग्नि (द्यौ) उत्पन्न हुई, सूर्य जिसकी समिधाएं हैं, चन्द्र (सोम) से मेघ (पर्जन्य) उत्पन्न हुआ है, पृथिवी से ओषधियें, पुरुष स्त्री में वीर्य सेचन करता है, इस प्रकार बहुत प्रजाएं (प्राणधारी) पुरुष से उत्पन्न हुई हैं † ॥ ५ ॥

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च। संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥ तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि। प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

‡ उससे आई हैं-ऋचाएं, साम, यजु, यह (तीन प्रकार

---

* जिस प्रकार शरीर से अलग जीवात्मा शरीर के अन्दर मूर्धा और नेत्र आदि सारे अवयवों से कार्य्य आरम्भ करता है, इस प्रकार सूर्य्य आदि अवयवों से कार्य्य करने वाला सब का अन्तरात्मा इन से अलग है। वही चेतन ब्रह्म जो शुद्ध रूप में परब्रह्म कहलाता है, वही इस रूप में विराट् और विष्णु कहा जाता है ॥

† यहां पांच अग्नियें बतलाई हैं, द्यौ, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, और योषा (स्त्री)। इन पांच अग्नियों का, और इनके द्वारा आत्मा का द्यौ से उतर कर पृथिवी पर शरीर धारण करना, इसका सविस्तर वर्णन बृहदारण्यक में लिखा है (देखो बृह० आ० ६। २। १०—१३)

‡ अब धर्म्म के साधान, धर्म की विधि और धर्म के फल की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाते हैं ॥

के मन्त्र) दीक्षाएं (यज्ञ के आरम्भ के नियम, मौञ्जी बन्धन आदि) सारे यज्ञ (अग्निहोत्रादि) और क्रतु (सोम याग) और दक्षिणाएं (जो ऋत्विजों को दीजाती हैं) वरस* यज्ञ, करने वाला और लोक (जो यज्ञ का फल हैं), जिन पर चन्द्र चमकता है, और जिन पर सूर्य्य (चमकता है) † ॥ ७ ॥ उससे बहुत प्रकार के देवता भी उत्पन्न हुए हैं, साध्य (देवता), मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण अपान (सांस छोड़ना और खींचना), चावल और जौ (हवि के लिये), तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य्य‡ और (यज्ञ करने की) विधि॥७

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः। सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणाः गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥८॥ अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे ऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः। अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥९॥ पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् । एतद् यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य

§ सात प्राण (इन्द्रिय) भी उससे उत्पन्न होते हैं, सात ज्वालाएं (इन्द्रियों का अपने २ विषयों का प्रकाश करना) सात

---

* यज्ञ के करने में काल का नियम है, इसलिये काल भी यज्ञ का अङ्ग है ॥

† केवल कर्मी दक्षिण मार्ग से उन लोकों को जाते हैं जहां चन्द्र चमकता है । और कर्म्म और उपासना वाले उत्तर मार्ग से उन लोकों को, जहां सूर्य्य चमकता है ॥

‡ तप, सत्य और ब्रह्मचर्य्य, ये यज्ञ के दिनों में व्रत के तौर पर पालन किये जाते हैं और श्रद्धा सारे यज्ञों का अङ्ग है ॥

§ सिर में रहने वाले सात इन्द्रिय, दो आंख, दो कान, दो नासिका और वाक् ॥

समिधाएं (विषय, जिनसे इन्द्रिय चमकते हैं) सात होम (विषयों का विज्ञान), सात ये लोक इन्द्रियों के स्थान, सिर के सात छेद, ये इन्द्रियों के रहने के लोक हैं), जिनमें इन्द्रिय विचरते हैं, (ये हृदय की) गुफा में रहने वाले हैं, और सात सात (हरएक प्राणी के लिये) स्थापन किये गए हैं ॥ ८ ॥ इससे समुद्र और सारे पर्वत (उत्पन्न हुए हैं), इससे बहती हैं सब प्रकार की नदियें, इस से उत्पन्न हुई हैं सारी ओषधियें और रस, जिस (रस) से यह अन्तरात्मा भूतों के साथ (भूतों से लपेटा हुआ) ठहरता है ॥ ९ ॥ पुरुष ही यह सब* कुछ है, कर्म, तप, ब्रह्म, परम अमृत, वह जो इसको (हृदय की) गुफा में छिपे हुए को जानता है, वह यहां हे सौम्य अविद्या की गांठ को बिखेर देता है ॥ १० ॥

दूसरा खण्ड ।

अविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत् मदमत्रै तत् समर्पितम् । एजत् प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥

(वह सारे) प्रकट है, निकट है, गुहाचर (हृदय की गुफामें विचरने वाला) प्रसिद्ध है, पर वह बड़ा स्थान है, इस में यह सब प्रोया हुआ है, जो चलता है, सांस लेता है और आंख झपकता और जो कुछ तुम स्थूल सूक्ष्म जानते हो (सब उसी में प्रोया हुआ है) वह पूजा के योग्य है, सब से श्रेष्ठ है, प्रजाओं की समझ से परे है ॥ १ ॥

यदर्चिमद् यदणुभ्योऽणु च यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥२॥ धनु-

* क्योंकि यह उसी से उत्पन्न हुए हैं और उसी के आश्रय हैं

गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं संधयीत। आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥३॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य-मुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ४

जो चमकने वाला है, जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है, जिस पर लोक स्थित हैं और लोकों में रहने वाले (स्थित हैं), वह अविनाशी ब्रह्म है, वह प्राण है, वह वाणी है, वह मन है*, वह सत्य है वह अमृत है,वह वीन्धेन(निशानालगाने)योग्य है उसको हे सोम्य वीन्ध ॥ २ ॥ उपनिषदों के (ज्ञान का) धनुष जो एक बड़ा भारी अस्त्र है,इसको पकड़कर उसमें उपासना(लगातार ध्यान)से तेज़ किये हुए बाण को जोड़ना चाहिये। और फिर केवल उसी सत्ता में लगा हुआ जो चित्त है, उस से इसको खींच कर उसी अविनाशी लक्ष्य(निशाने) को वींध।३। ओम् धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहलाता है। इसको एक अप्रमत्त (पूरा सावधान) पुरुष वींध सकता है, और तब वह बाण की नाईं (जो लक्ष्य पर लग कर उसके साथ एक रूप होगया है इस प्रकार वह ब्रह्मके साथ) तन्मय(तद्रूप) †हो जाएगा

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च-सर्वैः। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्च-थामृतस्यैष सेतुः ॥५॥ अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः। स एषोऽन्तश्चरते बहुधाजायमानः। ओ-मित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वःपाराय तमसःपरस्तात्

* प्राण का प्राण, मन का मन और वाणी का वाणी है॥

† बाह्याभ्यन्तर सब कुछ भूल कर॥

जिस में द्यौ, पृथिवी, और अन्तरिक्ष बुने हुए हैं, और मन, भी सारे इन्द्रियों के साथ। उसी एक (सर्वाश्रय) को जानो आत्मा. और दूसरी सारी बातें छोड़दो। अमृत (मोक्ष) का यह सेतु (पुल) है (जो संसार महासागर से पार उतारता है) ॥५॥ यह अनेक प्रकार से प्रकट होता हुआ अन्दर (हृदय) में विचरता है, जहां सारी नाड़ियें इस प्रकार मिली हैं जैसे रथ की नाभि में अरे। उस आत्मा का ओम्! इस प्रकार ध्यान करो। तुम्हारे लिये स्वस्ति (शुभ, कल्याण) हो, पार (किनारे पर) पहुंचने के लिये, जो अन्धेरे (के समुद्र) से परे है ॥ ६ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय। तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ॥७॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

*जो सबको जानता है और सब को समझता है, जिसकी यह (प्रत्यक्ष) इस भूमि पर महिमा है, यह आत्मा दिव्य ब्रह्मपुर

---

* यह जीवात्मा का वर्णन है। यहां 'सर्वज्ञ और सर्वविद्' से भिन्न २ इन्द्रियों के सारे विषयों का जानने वाला और समझने वाला अभिप्रेत है। उसके विज्ञान से सारे तत्वों से शुद्ध परब्रह्म के दर्शन होते हैं—(श्वेता उप० २ । १५) ॥

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोमेनेह युक्तः प्रपश्येत्
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥

जब योगयुक्त होकर दीपक के तुल्य आत्मतत्त्व से ब्रह्मतत्त्व को देखलेता है, जो अज, अटल, और सारे तत्त्वों से विशुद्ध है, तब उस देव को जानकर सारे फांसों से छूट जाता है ॥

(हृदय) में आकाश (हृदयाकाश) में रहता है। वह मनोमय (मन प्रधान होकर) इन्द्रियों के शरीर का नेता बनता है। वह अन्न (शरीर) में रहता है, हृदय के बहुत ही निकट, उसके विज्ञान से धीर पुरुष उस अमृत को देखते हैं जो आनन्दरूप (आनन्द से भरा हुआ) प्रतीत होता है ॥ ७ ॥ * तब हृदय की ग्रन्थि खुल जाती है, सारे संशय कट जाते हैं, और उस के कर्म्म क्षीण हो जाते हैं। † जब उसने पर (बड़े, ज्येष्ठ ब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म) और अवर (छोटे शबल) को देख लिया है ॥ ८ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्त मनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१०॥ ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

सब से ऊंचे सुनहरी कोश (मियान) में जो बिना धूलि (=अविद्या आदि दोषों) के है, और बिना अवयवों के है। वह शुद्ध है, ज्योतियों का ज्योति है। वह है, जिसको वे जानते हैं, जिन्होंने आत्मा को जाना है ॥९॥ ‡ न वहां सूर्य्य चमकता है; न चन्द्र और तारे, न ही ये बिजलियें चमकती हैं, यह अग्नि तो कहां! उसी के ही चमकने पर यह सब कुछ चमकता है। उसी की चमक से यह सब चमकता है ॥१०॥ ब्रह्म ही यह अमृत रूप सामने है, ब्रह्म पीछे

* परमात्मज्ञान का फल कहते हैं। † जन्म के हेतु नहीं रहते ॥
‡ देखो० कठ० उप० ५ । १५, श्वेता० उप० ६ । १४, गीता १५ । ६ ॥

है, ब्रह्म दायें और बायें है। यह नीचे और ऊपर फैला हुआ है, ब्रह्म ही यह सब कुछ है। यह सब से उत्तम है ॥११॥

* तीसरा मुण्डक—पहला खण्ड *

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीत-शोकः ॥ २ ॥ यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तार-मीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥३॥ प्राणो ह्येष यः सर्व-भूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी। आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥

*दो पक्षी जो सदा साथ रहने वाले मित्र हैं, दोनों एक वृक्ष को अलिङ्गन किये हुए हैं। उनमें से एक स्वादु फलको खाता है, दूसरा न खाता हुआ (केवल) देखता (ही) है[†] ॥१॥ उसी वृक्ष पर

---

* परा विद्या का उपदेश करते हुए यह बतलाया है, कि परमात्मदर्शन का उपाय ओंकार की उपासना है। अब यह बत-लाएंगे, कि जीवात्मा और परमात्मा एक साथ ही रहते हैं। जीवात्मा शोक में इसलिये है, कि वह अपने साथी को नहीं देखता है, जब उसको देखता है, तो शोक उस से परे हट जाता है। जो चाहता है, कि उसके दर्शन करूं, उसको सदा सचाई और तप आदि का जीवन बिताना चाहिये इत्यादि ॥

† दो पक्षी, जीवात्मा और परमात्मा हैं। वृक्ष शरीर है, जिस पर इन दोनों का घोंसला है। जीवात्मा इस में अपने कर्मों

पुरुष निमग्न हुआ (डूबा हुआ) असमर्थता (कमज़ोरी=ज्ञानबलके अभाव) से धोका खाता हुआ, शोक में पड़ा है। जब उस प्रियतम दूसरे (साथी) ईश (मालिक) को देखता है, और इसकी महिमा को देखता है, तब वह शोकरहित होजाता है* ॥२॥ जब वह देखने वाला सुनहरी रङ्गवाले, कर्तार, मालिक, पुरुष, ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) के योनि (चश्मे) को देखता है, तब वह विद्वान् पुण्य और पाप को झाड़कर निरञ्जन (क्लेशों से बचा हुआ) होकर परम तुल्यता को प्राप्त होता है ॥३॥ सचमुच यह जीवन है जो सब भूतों के द्वारा चमक रहा है, जो इसको समझता है, वह असली विद्वान् होता है, न कि बातें बनाने वाला। आत्मा में खेलता हुआ, आत्मा में रमण करता हुआ, अपने कर्तव्य को पूर्ण करता हुआ यह है, जो ब्रह्म के जानने वालों में सबसे श्रेष्ठ है † ॥४॥

ब्रह्म प्राप्ति के साधन बतलाते हैं:—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥५॥ सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ॥६॥

के फल भोगता है और परमात्मा उसे देखता है। मिलाओ ऋग्० १। १६४। २०; निरुक्त १४। ३०; श्वेता० उप० ४। ६। कठ० उप० ३। १॥

* देखो श्वेता० उप० ४। ७॥

† सारे पुस्तकों में मन्त्र के चौथेपाद का पाठ 'एष ब्रह्म विदां वरिष्ठः' मिलता है। शङ्करभाष्यके अनुसार यहां पाठ 'ब्रह्मनिष्ठो ब्रह्म विदांवरिष्ठः, होना चाहिये। छन्द के अनुसार भी यही पाठ ठीक प्रतीत होता है॥

बृहच्च तद् दिव्य मचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति । दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥७॥

सचाई, तप, सत्यज्ञान, और ब्रह्मचर्य्य से यह आत्मा सदा पाया जाता है, जो शरीर के अन्दर शुद्ध ज्योतिर्मय है; जिसको वे यति देखते हैं, जिन के दोष क्षीण होगए हैं ॥५॥ सत्य ही जीतता है; झूठ नहीं, सत्य से वह मार्ग फैला है, जो देवयान (देवताओं का मार्ग) है, जिस (मार्ग) से ऋषि लोग जो (लौकिक) कामनाओं से ऊपर हैं, वहां पहुंचते हैं, जहां वह सचाई का परम निधि (ब्रह्म) है ॥ ६ ॥ वह बड़ा है, दिव्य, अचिन्त्य रूप, और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर प्रतीत होता है, जो कुछ दूर है, उस सब से सुदूर है, तथापि वह यहां निकट ही है, देखने वालों के अन्दर वह यहां ही (हृदय की) गुफा में छिपा हुआ है ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥८॥ एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा॥९॥ यं यं लोकं मनसा सं विभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ॥१०॥

वह आंख से ग्रहण नहीं किया जाता, न ही वाणी से, न ही दूसरे इन्द्रियों से, न तप से वा (शुभ) कर्म्म से * ज्ञान की

* मिलाओ कठ० उप० ६।१२॥

निर्मलता से जब मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होता है, तब वह उस (ब्रह्म) को देखता है, उस निरवयव का ध्यान करता हुआ ॥८॥ यह सूक्ष्म आत्मा मन से जानने योग्य है, जिसमें प्राण पांच प्रकार से प्रविष्ट है। प्राणों के साथ प्रजाओं का हरएक का अपना २ चित्त प्रोया हुआ है। जिसके शुद्ध होने पर यह आत्मा समर्थ हो जाता है ॥९॥ जिस का अन्तःकरण शुद्ध है, वह पुरुष जिस २ लोक को मन से संकल्प करता है, और जिन कामनाओं को चाहता है (अपने लिये वा दूसरों के लिये *) उस २ लोक को जीतता है, और उन कामनाओं को (प्राप्त होता है)। इसलिये जो सुख चाहता है उसको उसकी पूजा करना चाहिये जो आत्मा को जानता है ॥१०॥

❀ दूसरा खण्ड ❀

स वेदैतत् परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्। उपासते पुरुषं येह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥१॥ कामान् यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र। पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥२॥

वह (आत्मा का जानने वाला) इस परम (सब से ऊंचे) ब्रह्मधाम † को जानता है, जिसमें सारा विश्व स्थापित है, और जो शुभ्र होकर चमकता है, जो धीर पुरुष निष्काम होकर उस पुरुष (आत्मज्ञ) का सेवन करते हैं, वे इस बीज को उलांघ जाते हैं, (वे फिर जन्म नहीं लेते) ॥ १ ॥ जो कामनाओं को चाहता है (उन्हीं का) ख्याल करता हुआ, वह कामनाओं से वहां २ जन्म लेता है, पर जिसकी कामनाएं पूरी होगई हैं, और आत्मा को पालिया है, उसकी सारी कामनाएं यहीं लीन होजाती हैं ॥२॥

* मिलाओ बृह० आ०१।४।१५ ॥ † देखो मन्त्र ४

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥३॥नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वा ऽप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥४॥

यह आत्मा न वेद से पाया जासकता है, न मेधा से, न बहुत सुनने से (सीखने से) हां जिसको वह आप चुन लेता है, वही उसे पासकता है, उसके शरीर को यह आत्मा अपना (देह) चुनता है * ॥३॥ यह आत्मा (आत्म) बल से हीन पुरुष से नहीं पाया जाता है, और न ही प्रमाद (असावधानी) से, अथवा संन्यास रहित तप से, हां जो विद्वान् इन उपायों (बल, अप्रमाद, और संन्याससहित तप) से यत्न करता है, उसका यह आत्मा ब्रह्म-धाम में प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाऽऽविशन्ति ।५। वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥ गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी-भवन्ति ॥७॥ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं

---

* कठ २ । २३ ॥

गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।८॥

ऋषि लोग जिन्होंने इसको पालिया है, वह ज्ञान में तृप्त होते हैं, वह अपने आपको जाने हुए हैं,उनके राग दूर होगए हैं, और वे शान्त हैं, वे धीर पुरुष उसको पाकर जो सब ओर से सब जगह पहुंचा हुआ है, और अपने आत्मा को उसी में लगा कर, सब को ही चीर जाते हैं ॥ ५ ॥ वेदान्त * के विज्ञान का उद्देश्य (परमात्मा) जिन्हों ने ठीक २ निश्चय कर लिया है, और जो यतिजन त्याग और योग से शुद्ध अन्तःकरण वाले हैं, वे सारे सब से उत्तम अमृत को भोगते हुए मरने के समय ब्रह्मलोकों में स्वतन्त्र होजाते हैं ॥ ६ ॥ उनकी पन्द्रह कलाएं † अपने२ कारणों में चली जाती हैं और उनके सारे इन्द्रिय अपने सदृश देवताओं ‡ में चले जाते हैं और उनके कर्म्म और विज्ञानमय आत्मा सब उस परले अव्यय ब्रह्म में एक होजाते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार बहती हुई नदिएं समुद्र § में अस्त होजाती हैं और अपना नाम और रूप खोदेती हैं, इसी प्रकार ब्रह्म का जानने वाला नामरूप से अलग होकर परे से परे जो दिव्य पुरुष है उसको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

स यो ह वैतत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति । नास्याब्रह्मवित् कुले भवति । तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९। तदेतदृचाऽभ्युक्तम्—क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं

---

* मिलाओ तै० आ० १०।१२।३ श्वे० उप ६।२२ कैव उप० ३ ॥

† देखो प्रश्न० उप० ६ । ४ यहां कर्मों का आत्मा में एक होना अलग कहा है, इस लिये शेष पन्द्रह कलाएं कही हैं ॥

‡ चक्षु सूर्य्य में इत्यादि ॥ § प्रश्न० उप० ६ । ५ ॥

जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः । तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद् यस्तु चीर्णम् ॥ १० ॥ तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच । नैतदचीर्णव्रतोऽधीते । नमः परम ऋषिभ्यो नमः परम ऋषिभ्यः ॥ ११ ॥

वह जो उस परम ब्रह्म को जानता है, ब्रह्म ही होजाता है । इसके कुल में कोई ब्रह्म को न जानने वाला नहीं जन्मता है । वह शोक को तर जाता है, और पाप को तर जाता है, हृदय की गांठों से विमुक्त हुआ अमृत होजाता है ॥ ९ ॥ सो यह ऋचा से कहा गया है—यह ब्रह्मविद्या केवल उन्हीं को बतलानी चाहिये, जो (अपने) कर्मों के पूरा करने वाले हैं, वेद को पढ़े हैं, (अपने) ब्रह्म में निष्ठा वाले हैं, जो श्रद्धा से भरे हुए स्वयं एक ऋषि (अग्नि) में होम करते हैं, और जिन्हों ने (आथर्वणों) की विधि के अनुसार शिरोव्रत (सिर पर अग्नि धारण करने का नियम) पूरा किया है ॥ १० ॥ यह सचाई (ब्रह्म विद्या) अङ्गिरा ऋषि ने पहले बतलाई, इसको कोई ऐसा पुरुष नहीं पढ़ सकता, जिसने व्रत नहीं पूरा किया । परम ऋषियों को नमस्कार है, परम ऋषियों को नमस्कार है ॥

इसका शान्तिपाठ वही है, जो प्रश्न उपनिषद् का है ।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

माण्डूक्य-उपनिषद्

माण्डूक्य-उपनिषद् माण्डूक्य ऋषि के नाम पर है, और इसका सम्बन्ध अथर्ववेद से है, इसी लिये अथर्व का शान्ति पाठ इसके आदि अन्त में पढ़ा जाता है। इस छोटीसी उपनिषद् में ब्रह्म के शबल और शुद्धस्वरूप का वर्णन पूर्ण है, और क्रम से है। इसमें उसके चार पाद बतलाए हैं, जिनमें से तीन तो शबल है, एक शुद्ध है। यह वर्णन एक ऐसी रीति पर है, कि जिससे स्वामी शङ्कराचार्य्य के मन्तव्य को बड़ी भारी पुष्टि मिली है। और स्वामी शङ्कराचार्य्य के परमगुरु गौड़पादाचार्य्य की इसी उपनिषद् पर कारिका हैं, स्वामी शङ्कराचार्य्य नें इनको बड़ा भारी आदर दिया है और इन पर अपना भाष्य लिखा है। वेदान्तियों के स्थिर किये हुए चार महावाक्यों में से "अयमात्माब्रह्म" यह महावाक्य इस उपनिषद् का है। इसके विवृत करने में जितनी कठिनाइयां हैं, उनके हल करने के लिये न केवल समधिक अनुसन्धान ही आवश्यक है, किन्तु अनुभव भी उसका साथी होना चाहिये।

गौड़पादाचार्य्य ने जो इस उपनिषद् पर कारिकाएं लिखी हैं, उसके चार प्रकरण हैं। पहला आगम प्रकरण है, इसमें उपनिषद् के तात्पर्य्य को खोला है। दूसरा वैतथ्य प्रकरण है, इसमें आत्म भिन्न सब पदार्थों के मिथ्या होने में कई हेतु दिये हैं। तीसरा अद्वैत प्रकरण है, इसमें अद्वैत का सत्य होना सिद्ध किया है। चौथा अलातशान्ति प्रकरण है, इस में दूसरे दर्शनों के परस्पर विरोध दिखला कर अद्वैतदर्शन को पुष्ट किया है। इनमें से आगम प्रकरण उपनिषद् के अर्थ से सम्बन्ध रखता है, इसलिये हम इस के सिवाय और किसी प्रकरण का यहां विचार नहीं करेंगे।

गौड़पादाचार्य्य और शङ्कराचार्य्य के अनुसार इस उपनिषद्

का यह आशय है, एक ही आत्मा सारे विश्व में भर रहा है और विश्व से निराला भी है । जहां जो चेतनता है, सब उसी की है । जिस द्वार से वह चेतनता बाहर प्रकाशती है, उसके भेद को लेकर उस में भेद प्रतीत होता है, वस्तुतः उसके स्वरूप में कोई भेद नहीं । हमारी प्रज्ञा का झुकाव इस अवस्था में बाहर की ओर है, इसलिये उसके जानने के लिये हमें बाहर से आरम्भ करके अन्दर की ओर जाना चाहिये, तब हम क्रम से उसके केवल स्वरूप को पालेंगे । इसलिये पहले जाग्रत फिर स्वप्न फिर सुषुप्ति और फिर तुरीय अवस्था का वर्णन किया है । इसकी प्राप्ति का साधन "ओम्" अक्षर है, जो इन अवस्थाओं को क्रम से वर्णन करता है । अर्थात् एक ही आत्मा है, जो इधर सांसारिक अवस्था में भोग भोगता है, और उधर अपने परमार्थ स्वरूप में शान्त, शिव, अद्वैत है । सांसारिक अवस्था में यह अपने उस असली स्वरूप को भूला हुआ है । इसी लिये अपने आप को असमर्थ जानता है और शोक में डूबता है । जब वह अपने आप को पहचान लेता है, तो शोक से ऊपर होजाता है । वह अपने असली स्वरूप को जिस तरह जान सकता है, उसके लिये उपनिषद् का आरम्भ किया गया है । यह आशय स्वामी शङ्कराचार्य्य, उनके परम गुरु और उनके अनुयायियों का है ।

इस विषय में हम भूमिका और बृहदारण्यक में सविस्तर लिख चुके हैं । यहां हमें केवल इतना ही लिखना है, कि जिस तरह जीवात्मा, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर में रहता है । इसी प्रकार ब्रह्म की स्थूल, सूक्ष्म और कारण जगत् में स्थिति को जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के रूपक (अलङ्कार) से वर्णन किया है । अर्थात् यह ब्रह्म का शबल रूप है, और उसका शुद्ध रूप इससे परे है । उसके इन तीनों रूपों को ओंकार की अ,

उ, म्, ये तीन मात्राएं क्रम से वर्णन करती हैं, उसका शुद्ध रूप, जिस को यहां तुरीय कहा है, उसके लिये कोई मात्रा नहीं, वह वाणी की पहुंच से परे है और मन की पहुंच से भी परे है। मन और वाणी उसके शबलरूप को सारी अवस्थाओं में दिखलाकर वापिस होजाते हैं और फिर उसका शुद्धस्वरूप खुलता है।

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं, भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव, यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ॥ १ ॥

(जो कुछ यह है) यह सब "ओम्" यह अक्षर है, उस का व्याख्यान (आरम्भ करते हैं)। भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह सब ओंकार है, और जो इसके सिवाय तीनों कालों से परे है, वह भी ओंकार ही है * ॥

यह विश्व ब्रह्म से भर रहा है, इसका एक रेणु भी ब्रह्म

---

* "तदस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्" "सर्वं हीदं नामनि" ॥

"इस (ब्रह्म) का यह जो कुछ (विकार) है, वह वाणी की तन्ति (लम्बी रस्सी) से और अलग २ नामों की रस्सियों से सब बांधा हुआ है" "यह सब नाम में है" इत्यादि श्रुतियों से जो कुछ यह है यह सब वाणी से बींधा हुआ बतलाया है। शब्द और अर्थ का ऐसा नियत सम्बन्ध है, कि कभी भी शब्द बिना अर्थ के और अर्थ बिना शब्द के प्रतीत नहीं होता। इसलिये कहा है, कि 'यह सब ओम् यह अक्षर है' जो कोई भी पदार्थ है, वह अपने नाम से अलग नहीं, और नाम सारे ओंकार से अलग नहीं, इसलिये यह सब कुछ ओंकार ही है ॥ परब्रह्म के जितलाने का उपाय भी ओंकार ही है, इसलिये वह भी ओंकार ही है ॥ उस अक्षर की यह व्याख्या है, कि जो कुछ तीनों कालों की सीमा में है, वह भी ओंकार है, और जो तीनों कालों की सीमा से बाहर अव्याकृत आदि हैं, वह भी ओंकार ही है (शङ्कराचार्य) ॥

की अन्तर्यामिता से खाली नहीं, मानों यह ब्रह्मका शरीर है और ब्रह्म इस सबके अन्दर अन्तरात्मा है। यह सारा उसका प्रकाशक है, और स्वयं उसी से प्रकाशित है। ब्रह्म का इस विश्व के साथ यह जो विशिष्टरूप है, उसी की उपासना 'ओम्' अक्षर से की जाती है, इसलिये कहा है, 'यह सब ओम्-यह अक्षर है' ओम् साधन है और 'यह सब' साध्य है। जो साधन असंदिग्ध साधन हो, उसको कभी २ साधन की भांति नहीं कहते, किन्तु साध्य (फल) रूप ही बना देते हैं, जिस तरह घी से आयु बढ़ती है, इसमें ज़रा सन्देह नहीं, इसलिये ब्राह्मण में आता है आयुर्वै घृतम्=आयु है घी। वास्तव में घी आयु नहीं, आयु का साधन है, पर यह असंदिग्ध साधन है, इसलिये उसे साध्यरूप ही बना डाला है। इसी तरह ओम् इस सबकी प्राप्ति का असंदिग्ध साधन है, इसलिये उसको 'यह सब, ओम् यह अक्षर है इस प्रकार साध्यरूप ही बना दिया है॥

ब्रह्म का अपररूप (शबलरूप) काल की सीमा में है पर (शुद्ध) काल की पहुंच से परे है। ओंकार अपर, पर दोनों की प्राप्ति का साधन है, सो यह कहा है; भूत, भविष्यत् और वर्तमान यह सब ओंकार ही है, और जो इसके सिवाय तीनों कालों से परे है, वह भी ओंकार ही है, मिलाओ कठ उप० २।१५ और प्रश्न० उप० प्रश्न० ५॥

सर्वꣳह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥ २ ॥

सब यह ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है, सो यह आत्मा चार पादवाला है* ॥ २ ॥

---

* सब कुछ जिसको ओंकारमात्र कहा है, यह सब ब्रह्म है। वह ब्रह्म कोई छिपा हुआ ही नहीं, किन्तु यह जो आत्मा है यह ब्रह्म है। जिस आत्मा के आगे चार पाद बतलाने हैं, उसको अपना हाथ हृदय पर रखकर बतलाया है कि यह आत्मा ब्रह्म है॥ सो यह आत्मा चार पाद वाला है (शङ्कराचार्य्य)॥

जैसे जीते जागते मनुष्य को देखकर उसको आत्मा वाला जानते हैं, इसी तरह यह जीता जागता विश्व भी आत्मा वाला है। यह आत्मा, जिसने इस सारे जगत् को जीवित कर रक्खा है, यह ब्रह्म है। उसके बिना सब कुछ ऐसा है जैसे देह बिना आत्मा के। इसलिये कहा है कि 'सब यह ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है' यह आत्मा जो इस जीते जागते विश्व में है यह ब्रह्म है। इसका स्वरूप दर्शन करने के लिये पहले इसको स्थूल जगत् में, फिर सूक्ष्म में और फिर कारण जगत् में आत्मा के तौर पर देखना चाहिये। यही तीनों उसके शबलरूप हैं, इसके पीछे उसके शुद्ध स्वरूप का दर्शन होता है। यही उसके चार पाद हैं॥

अब क्रम से उसके चार पाद बतलाते हैं :—

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग् वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥ स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः ॥४॥ यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति, तत् सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

जिस का स्थान जागरित (अवस्था) है, जिस की प्रज्ञा बाहर (की ओर) है, जो सात अङ्गों वाला, उन्नीस मुखों वाला और स्थूल का भोगने वाला है, वह वैश्वानर पहला पाद है ॥३॥ और जिस का स्थान स्वप्न (की अवस्था) है, जिस की प्रज्ञा

अन्दर (की ओर) है, जो सात अङ्गों वाला, उन्नीस मुखों वाला और सूक्ष्म का भोगने वाला है, वह तैजस दूसरा पाद है ॥४॥ फिर जब ऐसा सो जाता है, कि न कोई कामना चाहता है, न ही कोई स्वप्न देखता है, वह सुषुप्त है। यह सुषुप्त (अवस्था) जिसका स्थान है, जो एकरूप हुआ हुआ, प्रज्ञानघन (प्रज्ञान का एक ढेला) ही है, आनन्दमय, आनन्द का भोगने वाला, केवल चेतनता जिसका मुख है वह प्राज्ञ तीसरा पाद है ॥५॥ यह सबका ईश्वर है, यह सबका जानने वाला है, यह अन्तर्यामी है, यह सबका योनि (स्रोत) है, यह निःसन्देह सब भूतों का प्रभव और अप्यय (स्रोत और मुहाना, उत्पत्ति और लय का स्थान) है ६

मनुष्य जाग्रत में स्थूल शरीर में काम करता है, और स्वप्न में सूक्ष्म शरीर में। जाग्रत में वह बाहर के पदार्थों को जानता है, और स्वप्न में जाग्रत के ज्ञान की वासना उसके लिये अन्दर ही सृष्टि रच देती है। जाग्रत में वह स्थूल भोगों को भोगता है, और स्वप्न में सूक्ष्म भोगों को। आत्मा न स्थूल पदार्थों को भोगता है, न सूक्ष्म पदार्थों को, किन्तु उनका जो ज्ञान है, वही उसके लिये भोग है, यह बुद्धि जब जाग्रत में स्थूलगन्ध आदि विषयों में होती है, तब आत्मा स्थूल का भोक्ता कहा जाता है, फिर जब स्वप्न में स्थूल विषय नहीं रहते, तब वह सूक्ष्म का भोगने वाला है। इन दोनों अवस्थाओं के पीछे एक तीसरी अवस्था है, जिसको गाढ़ निद्रा कहते हैं, इस अवस्था में न वह स्वप्न देखता है, न किसी बाह्य पदार्थ को देखता है। जाग्रत में आत्मा स्थूल शरीर में होता है, स्वप्न में सूक्ष्म में और इस सुषुप्ति में कारणशरीर में रहता है। इन अवस्थाओं में आत्मा एक ही है, उसके रहने के स्थान भिन्न २ हैं ॥

ये अवस्थाएं उपनिषद् में अलंकार के तौर पर परमात्मा में दिखलाई हैं। जाग्रत अवस्था में आत्मा इस स्थूल देह में काम करता है, इसी प्रकार इस स्थूल ब्रह्माण्ड में काम करते हुए पर-

मात्मा को जाग्रत अवस्था में वर्णन किया है। यह सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का शरीर है और वह इस शरीर का आत्मा है, इस सारे ब्रह्माण्ड को चलाने वाला और नियम में रखने वाला केवल एक परमात्मा है, जो आत्मा की जगह इसमें काम करता है। अतएव वह इससे इस प्रकार अलग है, जिस प्रकार शरीर से जीवात्मा। और जिस तरह जीवात्मा और शरीर एक नहीं। इसी तरह यह ब्रह्माण्ड और परमेश्वर एक नहीं।

इस अवस्था में हम परमात्मा का हाथ इस स्थूल जगत् के प्रबन्ध में देखते हैं, इसलिये उसकी प्रज्ञा बाहर को बतलाई है। यहां*सात अंग और उन्नीस मुखों से ऋषि का क्या अभिप्राय है, यह बात जाननी सहज नहीं। हमें एक ऐसा प्रमाण चाहिये, कि जहां वैश्वानर आत्मा के सात अंग और उन्नीस मुख स्पष्ट वर्णन

---

* यह आत्मा जब जाग्रत अवस्था में है, तो इस की प्रज्ञा (चेतनता, ज्ञान) बाहर के विषयों में है (अविद्या के हेतु बाहर के विषयों में भासती है; वस्तुतः न कोई बाहर विषय है और न उस की स्वरूप भूत चेतनता स्वरूप से बाहर होती है) इस अवस्था में उसके ये सात अङ्ग हैं, द्यौ मूर्धा है, सूर्य्य चक्षु है, वायु प्राण है, आकाश मध्य शरीर है, जल मूत्राशय है, पृथिवी पाओं है और आहवनीय अग्नि मुख है॥ उसके उन्नीस मुख ये हैं॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय—नेत्र श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, और घ्राण, पांच कर्म्मेन्द्रय—वाणी, हाथ, पाओं, पायु और उपस्थ, पांच प्राण—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान; चार अन्तःकरण—मन,बुद्धि,अहङ्कार और चित्त॥ ये उन्नीस मुख अर्थात् द्वार हैं, जिनके द्वारा आत्मा ज्ञान लाभ करता है और कर्म्म करता है॥ इन द्वारों से वह शब्द स्पर्श आदि स्थूल विषयों को भोगता है॥ सब का नेता होने से वह वैश्वानर कहलाता है, अथवा सारे नर वही है इस लिये वैश्वानर है॥

प्रश्न—'यह आत्मा ब्रह्म है, सो यह आत्मा चार पाद वाला है' इस से प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) के चारपाद बतलाने की प्रतिज्ञा की है, अब यह जो वर्णनहै कि द्यौ उसका मस्तकहै सूर्य्य आंखहै इत्यादि, यह वर्णन विराट् का है नकि प्रत्यगात्मा का॥

किये हों । स्वामी शङ्कराचार्य्य यहां छान्दोग्य(५।१०-२३)के अंदर वैश्वानर विद्या के सम्बन्ध में कहे हुए ये सात अङ्ग यहां लेते हैं ।

उत्तर—अभिप्राय यह है, कि इस सारे आध्यात्मिक और आधिदैविक प्रपंच के अन्दर एक ही आत्मा है, उस आत्मा के चार पाद यहां बतलाने हैं ॥ इससे सब भूतों में एक आत्मा का दर्शन होसकेगा, यही उपनिषदों का तात्पर्य है इसलिये इस आध्यात्मिक पिण्डात्मा को द्युलोक आदि अङ्गों वाले विराट् आत्मा के साथ एक बनाकर उसे सात अङ्गों वाला बतलाया है अर्थात् विश्व (जाग्रतका अभिमानी प्रत्यगात्मा) और वैश्वानर (स्थूलजगत् का अभिमानी विराट् आत्मा) एक हैं और यह एकता यहां स्पष्ट दिखलादी है, इसी प्रकार आगे तैजस (स्वप्न में, सूक्ष्म शरीर के अभिमानी प्रत्यगात्मा) और हिरण्यगर्भ (सूक्ष्म जगत् के अभिमानी) में अभेद जानना चाहिये। सुषुप्त और अव्याकृत की एकता तो बनी बनाई है । सुषुप्त में जाकर किसी का भी व्यष्टिपन नहीं रहता ॥ यह भेद वरे (कार्य्य में) है, कारण में नहीं ॥ इससे यह सिद्ध होता है कि सारे द्वैत के शान्त होने पर एक अद्वैत ही तत्त्व है ॥

अब जाग्रत में जो बाह्य विषयों की प्रज्ञा होती है, इसके संस्कार मन में इस तरह खिच जाते हैं, जिस तरह वस्त्र पर चित्र खिच जाता है ॥ वही चित्रित मन स्वप्न में जाग्रत की नांई भासता है ॥ जाग्रत में बाह्य इन्द्रियों से बाह्य विषयों की प्रज्ञा होती है, स्वप्न में केवल मन से वासनारूपी प्रज्ञा होती है, मन इन्द्रियों की अपेक्षा अन्दर है, इसलिये इस अवस्था में उसकी प्रज्ञा अन्दर बतलाई है ॥ जाग्रत में जो प्रज्ञा होती है, वह स्थूल विषयों की होती है ॥ इसलिये जाग्रत का अभिमानीस्थूल का भोगने वाला है, और स्वप्न में जो प्रज्ञा होती है, वह विषयों के स्पर्श से शून्य, केवल वासनारूप होती है, इसलिये यह सूक्ष्म के भोगने वाला है ॥ स्वप्नाभिमानी के अङ्ग और द्वार वही हैं जो जाग्रत के अभिमानी के हैं ॥

अब जब ऐसा सोजाता है, कि न उसको कोई कामना होती है जैसाकि जाग्रत में थी, और न ही उसे कोई स्वप्न दीखता है, यह सुषुप्त है ॥ जाग्रत और स्वप्न में जो भिन्न २ वस्तु प्रतीत होती थीं, अब ये सब एक बन गई हैं, जिसतरह रात्रि के अन्धेरे में ढकाहुआ सबकुछ एक

'इस वैश्वानर आत्मा का द्यौ मूर्धा है, सूर्य चक्षु है, वायु प्राण है, आकाश शरीर का मध्यभाग है, जल मूत्राशय है, और पृथिवी

रूप भासता है। और स्वप्न वा जाग्रत में जो भिन्न २ ज्ञान थे, वे भी अब एकरूप होरहे हैं॥ जिस तरह रात्रि के अन्धेरे में ढका हुआ सब कुछ एक काला खिट्टा प्रतीत होता हैं, इसी तरह अब यहां भी प्रज्ञान का एक खिट्टा (घन) ही है, उसमें जाग्रत और स्वप्न की तरह कोई भेद नहीं रहा, जाग्रत और स्वप्न में मन जो भेस बदल २ कर आयास (तकलीफ) दे रहा था, अब वह आयास यहां नहीं रहे॥ इस लिये यह अवस्था आनन्दमय है और यहां आनन्द ही भोगा जाता है। इस सुषुप्ताभिमानी का जो स्वप्न वा जाग्रत की ओर आना है, उस में द्वार चेतनता है, इस लिये इसे चेतोमुख कहा है॥ यह है जो इस सब पर ईशन कर रहा है, सबका जानने वाला है, सबका अन्तर्यामी है, इससे सब प्राणी बाहर आते हैं और इसी में मिल जाते हैं॥

जिस तरह एक बड़ा मत्स्य नदी में दोनों किनारों की ओर घूमता हुआ उन दोनों किनारों से अलग है और उनके गुण दोषों से असङ्ग है। इसी तरह यह आत्मा क्रम से इन तीनों स्थानों में घूमता हुआ इन तीनों स्थानों से अलग है और इन के गुण दोषों से असङ्ग है। और वह एक है। और वह अपनी इस एकता को अनुभव करता है, कि जो मैं सोया हुआ था, वही मैं अब जागता हूं॥ जो जाग्रत में बाहर के दृश्य देखता है, वही स्वप्न में अन्दर के दृश्य देखता है वही फिर सुषुप्ति में सारे दृश्य बन्द करके आराम करता है॥ जाग्रत में इसका स्थान बाहर के इन्द्रिय हैं, स्वप्न में मन है और सुषुप्ति में हृदयाकाश। इन तीनों का अनुभव कभी २ हम जाग्रत में ही कर लेते हैं। आंख के अन्दर बैठकर एक दृश्य को देखता हुआ आत्मा-विश्व है, वही फिर आंख को बन्द करके मन में स्थिर होकर उसको स्मरण करता हुआ स्वप्न की तरह मन में ही उसका वासनारूपी रूप बना लेता है। इस लिये वही विश्व अब तैजस है। वह तैजस फिर स्मरण को बन्द करके एक रूप होकर हृदय में ठहरता है, अब वही तैजस प्राज्ञ है। इसी तरह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में भी वह एक ही है। और सारे प्राणियों में वही एक है—"एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः" (श्वेता० उप०)—एक देव

पाँओं है' यह छः अङ्ग कहकर आगे कहा है, कि 'आहवनीय अग्नि उसका मुख है' इस प्रकार ये सात उसके अङ्ग हैं, पर हम वहां स्पष्ट देखते हैं, कि वहां छः ही अङ्गों का वर्णन है, उसके पीछे जो अग्निहोत्र की कल्पना की गई, उस में शरीर के अङ्गों को अग्निहोत्र के अङ्ग बतलाते हुए मुखको आहवनीय कहा है। उसको मिलाकर ये अङ्ग सात नहीं गिने जाने चाहियें, क्योंकि वह एक अलग वर्णन है, और वहां अकेले मुख का वर्णन नहीं किन्तु उसके साथ और अङ्गों का भी वर्णन है। उन में से अकेले मुख को लेने में कोई हेतु नहीं, सिवाय इसके कि यहां की सात की संख्या पूरी हो जाए। और फिर वहां अर्थ करते हुए स्वामी शङ्कराचार्य्य ने लिखा है कि 'यह जो मुखहै यह आहवनीय अग्नि की जगह समझना चाहिये क्योंकि इसमें अन्न होमा जाता है'। अर्थात् वहां मुख को आहवनीय बतलाया है। और यहां आहवनीय को वैश्वानर का मुख कहते हैं। यह उनके अपने ही अर्थ में भेद भी है। और जो मुण्डक २।२।४में विराट् का वर्णन करते हुए कहा है, 'द्यौ इसका मूर्धा है, सूर्य और चन्द्र नेत्र हैं, दिशाएं श्रोत्र हैं, खुले वेद वाणी हैं, वायु प्राण है, विश्व हृदय है, पृथिवी पाओं है, और यह सब भूतों का अन्तरात्मा है, इस में भी सात से अधिक अङ्ग कहे हैं। सूर्य्य और चन्द्र दो हैं, दिशाएं चार हैं और वेद चार हैं। और दूसरी ओर नेत्र, श्रोत्र और पाओं दो २ बतलाए हैं। और फिर ऐसी कल्पना में न्यूनाधिक भेद भी होसक्ता है। इसलिये सात अंग और उन्नीस

सब जन्तुओं में छिपा हुआ है, यह श्रुति कहती है। भेद इसलिये प्रतीत होता है, कि वह अन्तःकरण जिसके द्वारा इस अवस्था में हम उसका पता लगाते हैं, वह भिन्न २ और परिच्छिन्न हैं। और हम उसको अन्तःकरण से पृथक् करके देखते नहीं, इसलिये अन्तःकरण अपने धर्म उस में दिखला देता है। (शंकराचार्य्य)॥

मुख क्या हैं ? इसके लिये अभी हमें और ढूंढना चाहिये।

इस अवस्था में उसका ज्ञान स्थूल जगत् के प्रबन्ध में है, इसलिये स्थूल का भोक्ता कहा है। इस अवस्था में उसको वैश्वानर कहते हैं अर्थात् सब का नेता। उसके चार पादों में से इसको सब से पहले जानते हैं, इसलिये पहला पाद कहा है।

इस प्रकार जब मनुष्य परमात्मा की उपासना करते हुए इस ब्रह्माण्ड में उसका दर्शन करता है और इसमें उसकी अनन्त शक्ति को अनुभव करता है, तो चित्त के एक जगह टिक जाने से स्वभावतः उसका ध्यान सूक्ष्म जगत् में जाता है, जो इस स्थूलका बीज रूप है, और उस में भी वह परमात्मा की अद्भुत शक्ति को काम करते हुए देखकर आश्चर्य होजाता है, यह उपासना की दूसरी भूमि है, पहली भूमि में स्थूल ब्रह्माण्ड परमात्मा का शरीर स्थानी है और दूसरी में सूक्ष्म। इसी अवस्था का नाम उपनिषद् में स्वप्न की अवस्था लिखा है॥

इस अवस्था में वह परमात्मा के (ज्ञान के) हाथ को उस सूक्ष्म जगत् में काम करता हुआ पाता है, इसलिये कहा है, कि वह अन्दर प्रज्ञा वाला है, और सूक्ष्म को भोगने वाला है। स्थूल शरीर (जगत्) में जो उसके अङ्ग और मुख बतलाए हैं, वही यहां भी होने चाहियें। स्थूल में स्थूल है और सूक्ष्म में सूक्ष्म, इसलिये कहा है, सात अङ्गों वाला और उन्नीस मुखों वाला है।

जब मनुष्य परमात्मा को इस अवस्था में काम करते हुए देख लेता है, जिस का वर्णन ऊपर किया गया है, तो वह और आगे बढ़ता है, और सारी सूक्ष्मता की हद्द पर पहुंच कर वह प्रकृति के अन्दर परमात्मा की स्थिति देखता है. इसी अवस्था का नाम उपनिषद् में सुषुप्ति अवस्था लिखा है। सुषुप्ति अवस्था वह है, कि जहां न बाह्य विषयों में कोई कामना है और न ही

अन्दर कोई स्वप्न देखाजाता है, किन्तु उस समय कोई भी विशेष-विज्ञान (यह पहाड़ है, यह नदी है इत्यादि विज्ञान) नहीं होता। इसी प्रकार कारण जगत् में पहुंच कर स्थूल और सूक्ष्म कार्यों की रचना और प्रबन्ध से परमात्मा को परे देखता है, उसकी इच्छा और ज्ञान के भेद जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् में प्रतीत होते थे, कारण में वह सब एक होजाते हैं और वह एक प्रज्ञानघन, आनन्दमय और आनन्द को भोगने वाला प्रतीत होता है ॥

यहां उसका नाम प्राज्ञ है, यह सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सर्वान्तयामी है, इसी से सब कुछ बाहर आता है और इसी में जाकर फिर मिलता है। यह तीसरा पाद है। यह तीनों रूप उसके शबल हैं। क्योंकि यहां तक प्रकृति का सम्बन्ध उसके साथ है, उस का केवल स्वरूप अभी नहीं जाना गया। पर है वह एकही, जो इन तीनों अवस्थाओं में है, और इसके पीछे अपने केवल स्वरूप में है ॥

शबलरूप का तीनों अवस्थाओं में वर्णन करके अब उसके शुद्धस्वरूप का वर्णन करते हैं—

नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥

चौथे (तुरीय) को ब्रह्मवादी ऐसा मानते हैं, कि न अन्दर की ओर प्रज्ञावाला, न बाहर की ओर प्रज्ञावाला, न दोनों ओर की प्रज्ञावाला, न प्रज्ञानघन, न जानने वाला, न नजानने वाला है, वह अदृष्ट है, उसको व्यवहार में नहीं लासक्के, उसको पकड़ नहीं सक्के, उसका कोई चिन्ह नहीं, वह चिन्ता में नहीं आसक्ता उसको बतला नहीं सक्के, वह आत्मा है केवलं यही प्रतीति उसमें

सार है, वहां प्रपंच का झगड़ा नहीं, वह शान्त है, शिव है और अद्वैत है, वह आत्मा है, वह जानने योग्य है * ॥ ७ ॥

ब्रह्म के तीन शबलरूप जानकर फिर वह ब्रह्मदर्शी और आगे बढ़ता है, और वह इस तुरीय के दर्शन करता है, पहली तीन अवस्थाओं में उसने ब्रह्म को स्थूल, सूक्ष्म जगत् में, और फिर कारण जगत् में अपनी अनन्तशक्ति से काम करते हुए देखा था। अब इस अवस्था में प्रकृति के सम्बन्ध को छोड़कर केवल परमात्मा के दर्शन करता है। यही उसका केवल स्वरूप है, यहां मन और वाणी की पहुंच नहीं। क्योंकि उसका यह स्वरूप उन धर्मों से परे है,जो उसके विशिष्टरूप में प्रतीत होते थे। इसलिये तुरीय का वर्णन सर्वत्र निषेधमुख(नेति नेति) से होता है,न कि विधिमुख से जैसाकि यहां है। उसका यह रूप सूक्ष्म जगत् से परे है, इसलिये

---

* आत्मा का परमार्थ स्वरूप शब्द का विषय नहीं, इसलिये उसे निषेधमुख से दिखलाते हैं। पहली तीनों अवस्थाएं उसमें कल्पित हैं, इसलिये तुरीय को उन तीनों के अभिमानी और उनके धर्मों से अलग दिखलाया है। "एकात्मप्रत्ययसारम्" जाग्रत आदि स्थानों में 'एक है यह आत्मा' यह जो स्थिर रहने वाली प्रतीति है, यही तुरीय का पता देती है, अथवा अकेली आत्मप्रतीति ही उसमें प्रमाण है। (शंकराचार्य्य) (और सारा जैसा आशय ऊपर दिया है, वैसा ही है, (सम्पादक) ॥

विश्व और तैजस कार्य्य और कारण से बन्धे हुए हैं, प्राज्ञ कारण से बंधा हुआ है और तुरीय में कोई बन्धन नहीं है। विश्व और तैजस ऐसी नींद में हैं, जहां उनको बहुत कुछ उलट पलट दीख रहा है और प्राज्ञ उस नींद में है जहां कुछ नहीं दीखता। पर तुरीय पर यह दोनों ही प्रकार की नींद नहीं है। इस अनादि माया (उलटा जानना और न जानना) से सोया हुआ जीव जब जाग उठता है, तो वह अपने उस तुरीय शान्त, शिव अद्वैतरूप को जानलेता है (शंकराचार्य्य) ॥

वह अन्तःप्रज्ञ नहीं, स्थूल से भी परे है, इसलिये वह बहिष्प्रज्ञ नहीं, और इसलिये एक साथ दोनों का जानने वाला भी नहीं। वह कारण से भी परे है, इसलिये प्रज्ञानघन भी नहीं। वह सारे सम्बन्धों से परे है, इसलिये वह जाननेवाला नहीं, पर वह अचेतन भी नहीं। ज्ञानेन्द्रियों से उसे देख नहीं सकते, इसीलिये वह हमारे व्यवहारपथ से परे है, कर्मेन्द्रियों से उसको पकड़ नहीं सकते, उसका कोई चिन्ह नहीं, वह मन के चिन्तन से परे है, शब्द से उसे कह नहीं सकते। बस वह आत्मा है, यहां यही एक ज्ञान है, यह प्रपंच जो पहली तीनों अवस्थाओं में था, वहां शान्त है, और इसीलिये वह शान्त, शिव, अद्वैत है। यह आत्मा है, "यस्यभासासर्वमिदंविभाति" यह जानने योग्य है, इससे परे कुछ नहीं।

आत्मा के चारों पाद वर्णन करके अब क्रम से उनके साथ ओंकार की मात्राओं का सम्बन्ध बतलाते हैं—

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकार मकार इति ॥ ८॥ जागरितस्थानोवैश्वनरोऽकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति हवै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥ स्वप्नस्थान स्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित् कुले भवति य एवंवेद ॥ १०॥ सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति हवा इद ँ सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥

. सो यह आत्मा अक्षर (ओंकार) है, ओंकार (अक्षर) मात्राओं के अधिकार में है। पाद मात्रा हैं, और मात्रा पाद हैं। (मात्रा ये हैं) अकार, उकार, और मकार ॥ ८ ॥ जागरित जिस का स्थान है, वह वैश्वानर अकार है, जो पहली मात्रा है। आप्ति (प्राप्ति) से और आदि वाला होने से। जो इसको जानता है, वह सारी कामनाओं को प्राप्त होता है और आदि (मुखिया) बनता है ॥९॥ स्वप्न जिसका स्थान है, वह तैजस, उकार है, जो दूसरी मात्रा है। ऊंचा होने से अथवा मध्यस्थ होने से। वह जो इसको जानता है, वह ज्ञान के सिलेसिले को ऊंचा लेजाता है और समान होता है। इसके कुल में कोई ऐसा नहीं जन्मता, जो ब्रह्म का न जानने वाला हो ॥ १० ॥ सुषुप्त जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ, मकार है, जो तीसरी मात्रा है, मिनने से अथवा लय से। वह जो इसको जानता है वह इस सब को मिन लेना है, अथवा लय का स्थान होता है ॥११॥

अपर और पर (शबल और शुद्ध) ब्रह्म की प्राप्तिका साधन ओंकार है यह पूर्व दिखला आए हैं, और यह उसका असन्दिग्ध साधन है, इसलिये ओंकार को ब्रह्मरूप ही कहा है। वही एकता यहां भी आत्मा और ओंकार की दिखलाई है। आत्मा के जो तीन शबलरूप दिखलाए हैं, उनकी एकता ओम् की मात्राओं के साथ दिखलाई है। अर्थात् अ, उ, म् यह क्रम से वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ का बोधन करते हैं, जो उसके तीनों शबलरूप हैं। वैश्वानर पहला पाद है, उसको ओम् की, अ, यह पहली मात्रा बोधन करती है। यह 'अ' 'आप्' धातु से है, जिसका अर्थ है प्राप्त होना। वैश्वानर सर्वत्र प्राप्त है इसलिये उसे अ कहते हैं। जो अ मात्रा से इस वैश्वानर को उपासता है, वह सारी कामनाओं को प्राप्त होता है। क्योंकि जिस धर्म को लेकर उसकी उपासना करते हैं, वैसा ही फल मिलता है। अ, किस तरह वैश्वानर का नाम है, इसका एक उत्तर तो यह दिया है, कि यह आप् से बना

है। अथवा दूसरा उत्तर यह है, कि अ, आदि (पहली) मात्रा है और वैश्वानर आदि (पहला) पाद है, इसलिये अ से वैश्वानर लिया जाता है, जो ऐसा जानकर उसकी उपासना करता है, वह महापुरुषों में आदि (मुखिया) होता है। फिर उ, जो दूसरी मात्रा है, यह तैजस को बोधन करती है। क्योंकि यह उत्कृष्ट (ऊंचा) शब्द से लिया गया है। तैजस वैश्वानर से ऊंची अवस्था है, इसलिये 'उ' से तैजस लिया जाता है। जो यह जानकर उस को उपासता है, वह अपने ज्ञान के सिलसिले को ऊंचा लेजाता है। अथवा यह 'उ' उभय से है, जिसके अर्थ हैं दोनों। यह 'उ' अ और म् इन दोनों मात्राओं के मध्य में है और तैजस, वैश्वानर और प्राज्ञ के मध्य में है, इसलिये 'उ' से तैजस लिया है। जो ऐसा जानकर इसको उपासता है। वह सब के लिये मध्यस्थ होता है, न उसे कोई द्वेष दृष्टि से देखता है, न वह किसी को द्वेष दृष्टि से देखता है। और उसका कुल ब्रह्मविद् कुल बनता है। सुषुप्त स्थानी जो प्राज्ञ है, उसको म् यह तीसरी मात्रा बोधन करती है। 'म्' मा धातु से है, जिसका अर्थ मिनना है, प्राज्ञ से ही तैजस और विश्व सृष्टि के समय प्रकट होते हैं और प्रलय के समय उसी में एक होते हैं। इसलिये प्राज्ञ से ये दोनों अवस्थाएं मिनी हुई हैं, इसलिये 'म्' से प्राज्ञ लिया जाता है। जो ऐसा जानकर उस की उपासना करता है वह इस सारे जगत् को मिन लेता है, ठीक २ जान लेता है। अथवा 'म्' इसलिये प्राज्ञ लिया जाता है कि 'म्' दूसरी मात्राओं के लय का स्थान है, क्योंकि यह अन्त की मात्रा है, और प्राज्ञ, विश्व और तैजस के लय का स्थान है। जो ऐसा जानकर उसको उपासता है, वह लय का स्थान होता है, बहिर्मुख से अन्तर्मुख होजाता है। यह तीनों उसके अपर रूप हैं जिनको ये तीनों मात्राएं क्रम से बतलाती हैं।

किस तरह यह अक्षर पर ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है सो बतलाते हैं :—

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव स विशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद ॥ १२ ॥

अमात्र (जिसकी कोई मात्रा नहीं, वह ओंकार) तुरीय आत्मा है, जो व्यवहार में नहीं आता, जहां प्रपञ्च का झगड़ा नहीं, जो शिव, अद्वैत है। इस प्रकार ओंकार आत्मा ही है, वह जो इसको जानता है, वह आत्मा से आत्मा में प्रवेश करता है॥ १२

तुरीय वाणी की पहुंच से परे है, इसलिये ओंकार उसके तीनों शबल रूप दिखला कर ठहर जाता है, और वहां अमात्र ओंकार पहुंचता है। ओंकार तुरीय के द्वार पर पहुंचकर अपनी मात्रा बन्द कर लेता है और अब अमात्ररूप होकर उसको आगे लेजाता है। इसलिये ओंकार में चित्त को लगाना चाहिये, ओंकार निर्भय ब्रह्म है। जिसने ओंकार में चित्त को जोड़ा है, उसके लिये कहीं भय नहीं। ओंकार ही अपर ब्रह्म है और ओंकार ही परब्रह्म है। यह आलम्बन तुम्हारे आत्मा को परम आत्मा से मिलाएगा ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

मुण्डक के मन्त्रों की प्रतीकें।

॥ ओ३म् ॥

सूचीपत्र ।

संस्कृत के अनमोल रत्न ।

अर्थात् वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, धर्मशास्त्रों और इतिहास ग्रन्थों के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक भाषा अनुवाद ।

ये भाषानुवाद पं० राजाराम जी प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर के किये ऐसे बढ़िया हैं, कि इन पर गवर्नमिन्ट और यूनीवर्सिटी से पं० जी को बहुत से इनाम मिले हैं। योग्य २ विद्वानों और समाचारपत्रों ने भी इनकी बहुत बड़ी प्रशंसा की है । इन प्राचीन माननीय ग्रन्थों को पढ़ो और जन्म सफल करो ॥

(१) श्री वाल्मीकि रामायण—भाषा टीका समेत। वाल्मीकि कृत मूल श्लोकों के साथ २ श्लोकवार भाषा टीका है। टीका बड़ी सरल है। इस पर ७००) इनाम मिला है। भाषा टीका समेत इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल ६।)

(२) महाभारत—अनावश्यक भाग छोड़ अठारह पर्व भाषा टीका समेत। इस की भी टीका रामायणवत् ही है। मूल्य केवल १२)

(३) भगवद्गीता—पद पद का अर्थ, अन्वयार्थ और व्याख्यान समेत। भाषा बड़ी सुपाठ्य और सुबोध। इस पर ३००) इनाम मिला है मूल्य २।) गीता हमें क्या सिखाती है ।–)

(४) ११ उपनिषदें—भाषा भाष्य सहित—

१—ईश उपनिषद्	≡)	७—तैत्तिरीय उपनिषद्	॥)
२—केन उपनिषद्	≡)	८—ऐतरेय उपनिषद्	≡)
३—कठ उपनिषद्	।≡)	९—छान्दोग्य उपनिषद्	२।)
४—प्रश्न उपनिषद्	।–)	१०—बृहदारण्यक उपनिषद्	२।)
५,६—मुण्डक और माण्डूक्य दोनों इकट्ठी	।=)	११—श्वेताश्वतर उपनिषद्	।–)
		उपनिषदों की भूमिका	।–)

(५) मनुस्मृति—[१] मूल श्लोक मोटे टाइप में [२] श्लोकवार टीका बड़ी सरल और आशय पूरा स्पष्ट कर दिया है [३] मनुस्मृति

पर जो पुरानी सात टीका हैं, उन में जहां कहीं अर्थों में भेद हुआ है, वे भेद भी टिप्पणी में स्पष्ट कर दिये हैं [४] सब से बढ़ कर यह, कि मनुस्मृति का जो २ श्लोक वा जो २ विषय, बौधायन, वासिष्ठ गौतम, आपस्तम्ब याज्ञवल्क्य वा विष्णु स्मृति के साथ मिलता है, वहां उन के भी पते दिये हैं [५] आदि में एक सविस्तर भूमिका में अनेक विषयों पर विचार किया है [६] विषय सूची बड़ा स्पष्ट है। (७) श्लोक सूची भी दिया है। इतने बड़े परिश्रम से ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी बना है, और ग्रन्थ भी बहुत बड़ा हो गया है। मूल्य तो भी ३।) मात्र है।

(६) निरुक्त—इस पर भी २००) इनाम मिला है ४॥)

७—योगदर्शन	१।)	१५—दिव्य जीवन	१)
८—वेदान्त दर्शन	४)	१६—आर्य पञ्च महायज्ञ पद्धति	।–)
९—वैशेषिक दर्शन	१॥)	१७—स्वाध्याय यज्ञ	१)
१०—सांख्य शास्त्र के तीन प्राचीन ग्रन्थ	॥।)	१८—वैदिक स्तुति प्रार्थना	≡)
११—नवदर्शन संग्रह	१।)	१९—पारस्कर गृह्यसूत्र	१॥≡)
१२—आर्य-दर्शन	१॥	२०—बाल व्याकरण इस पर २००) इनाम मिला है	॥)
१३—न्याय प्रवेशिका	॥≡)	२१—सफल जीवन	॥
१४—आर्य-जीवन	१॥)	२२—प्रार्थना पुस्तक	–)॥

२३—हिन्दी टीचर—अंग्रेजी से हिन्दी सीखने की अनुपम पुस्तक ॥।)

२४—द्रौपदी का पति केवल अर्जुन था—यह महाभारत के ही प्रमाणों से दिखाया गया है =) तत्त्वप्रदीपिका-चित्सुखी १॥)

२५—नल दमयन्ती—नल और दमयन्ती के अद्वितीय प्रेम, विवाह विपद् तथा दमयन्ती के धैर्य कष्ट और पातिव्रत्य का वर्णन ।)

वेद और महाभारत के उपदेश	–)।	वेद मनु, और गीता के उपदेश	–)॥
वेद और रामायण के उपदेश	–)।	वैदिक आदर्श	)॥
निघण्टुः ॥=)		हिन्दी गुरुमुखी	–)

नोट—कार्यालय की इन अपनी पुस्तकों के सिवाय और भी सब प्रकार की पुस्तकें रिआयत से भेजी जाती हैं॥

मिलने का पता—

मैनेजर आर्ष-ग्रन्थावलि लाहौर।